HindiTech
A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal

उर्दू-हिंदी : भाषावैज्ञानिक संबंध

ज़ुबैर शादाब

zubairk73@gmail.com

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के उर्दू अकादमी में प्रोफेसर

उर्दू-हिंदी भाषा के साझा इतिहास पर विशेष रूप से और इनकी साहित्यिक परंपराओं पर सरसरी तौर से जो कुछ लिखा गया, उनमें अधिकतर विश्लेषण या तो भावनात्मक हैं या फिर द्वेषपरक, एकतरफ़ा और इकहरा। संभवतः ऐसा इसलिए हुआ कि जो विद्वान उर्दू-हिंदी भाषा तथा इनकी साहित्यिक परंपराओं से अवगत थे, वे भाषा-राजनीति के शिकार होकर रह गये और जो इन दोनों से भलीभाँति परिचित नहीं थे, वे अज्ञानतावश ख़याली पुलाव पकाते रहे। हिंदी के विद्वानों ने उर्दू को मुसलामानों से जोड़कर उसे या तो यावनी, विदेशी, हिंदी की एक शैली, बेघर की भाषा इत्यादि जैसी संज्ञाएँ देने अर्थात् दोनों भाषाओं के बीच खाई खोदते रहने का काम किया और उर्दू वालों ने हिंदी को गँवारू और गैर मेयारी भाषा कह कर इसका न केवल परिहास किया, बल्कि दोनों भाषाओं के बीच दूरी भी पैदा की। जबकि इन दोनों भाषाओं में इतना गहरा संबंध है कि शायद ही विश्व की किन्हीं दो भाषाओं में हो। इन दोनों भाषाओं की जड़ एक है, इनकी संरचना एक जैसी है, इनकी संस्कृति में विभिन्नता कम समानता अधिक है। इन्हीं समानताओं के आधार पर अक्सर लोग इन्हें एक ही भाषा के दो रूप समझ लेते हैं। यह सत्य है कि इन दोनों भाषाओं के उद्भव का आधार एक है, परंतु इनके भाषावैज्ञानिक तथा साहित्यिक विकास की दिशाएँ भिन्न हैं। इस प्रकार उर्दू-हिंदी दो महानतम भाषावैज्ञानिक और साहित्यिक परंपराओं को परिभाषित करने का स्वतंत्र माध्यम हैं। यद्यपि हिंदी ने संस्कृत से और उर्दू ने प्राकृतों के इलावा अरबी-फ़ारसी से संबंध बनाए रखा, जिसके

कारण दोनों भाषाओं की शब्दावली में अच्छा-खासा फर्क़ है। इसी प्रकार उर्दू ने अरबी-फ़ारसी तथा संस्कृत की साहित्यिक परंपराओं से स्वयं को सुसज्जित किया तथा भारतीय लोक साहित्य से कम संबंध रखा। इसके विपरीत हिंदी ने संस्कृत के साथ-साथ भारत के लोक-साहित्य की परंपरा को मज़बूती से अपने साहित्य में समाहित किया।

दोनों भाषाओं का पूर्वज प्राकृत है। हज़ारों वर्ष पहले जब आर्य भारत आए, तो वह यही भाषा बोलते थे। जब इस भाषा ने मानक रूप प्राप्त कर लिया, तो उसको संस्कृत कहा गया। दसवीं और ग्यारहवीं सदी इस्वी में मुसलमानों के भारत आने के उपरांत राजनैतिक नक़्शे के साथ-साथ भारत के साँस्कृतिक और भाषावैज्ञानिक रूप में भी तेज़ी से बदलाव आने लगे। अरबी, फ़ारसी और तुर्की के प्रभाव से हज़ारों नये शब्द अपभ्रंशों में प्रवेश पाने लगे और इस प्रकार लेन-देन और रोज़मर्रा की आवश्यकाओं के लिये एक 'रेख़्ता ज़बान' सामने आने लगी। उत्तर भारत में उस समय शौरसेनी अपभ्रंश का युग था, जबकि सिंध, मुल्तान और बहावलपुर आदि में कैकई अपभ्रंश प्रचलित थी। प्रो. गोपीचन्द नारंग के अनुसार—"इन्हीं दो अपभ्रंशों और उनकी बोलियों ने मिलकर नई अखिल भारतीय भाषा के लिये खाद का काम किया होगा।"

उत्तर भारत में सिंध के उपरांत हिंदूओं और मुसलमानों की मुलाक़ात पंजाब में हुई। ग़ज़नवियों की राजधानी लाहौर थी। उसी युग में मुसलमानों की एक बड़ी संख्या पंजाब में बस गई और साँस्कृतिक मेल-जोल के साथ भाषाओं का लेनदेन भी प्रारंभ हो गया। ग़ज़नवियों का राज पंजाब में लगभग डेढ़ सौ साल रहा। उनके सेनानी तुर्की, दरी और पश्तो बोलते हुए आए थे, परंतु उनकी साँस्कृतिक और सरकारी भाषा फ़ारसी थी, जिसका प्रभाव स्थानीय बोलियों पर पड़ने लगा। इस प्रकार एक नई मिलवा भाषा का उद्भव स्वाभाविक था। उसी नई मिलवा भाषा को उस समय "हिंदी" अर्थात् "हिंद की भाषा" कहा गया। यही "हिंदी" या "हिंदवी" पहले उर्दू और फिर आधुनिक हिंदी का आधार बनी।

ग़ज़नवियों के उपरांत ग़ौरियों का राज स्थापित हुआ, तो दिल्ली राजधानी बनी। इसी युग से उर्दू-हिंदी के आरंभिक इतिहास के दूसरे युग का आरंभ हुआ। महमूद शीरानी का मत है कि ग़ौरी के हमलों के बाद पंजाब से लोगों की बड़ी संख्या दिल्ली की ओर चली गई इस प्रकार अपने साथ नई भाषा "हिंदवी" को भी लेती गई, जो ग़ज़नवियों के युग में ही "ज़बान-ए-लाहौरी" अर्थात् पंजाबी से भिन्न हो गई थी। दिल्ली के आस-पास उस युग में शौरसेनी की बोलियाँ विशेषकर खड़ी, हरियाणवी और ब्रज अति महत्त्वपूर्ण थीं। परंतु पंजाबी मिश्रित हिंदवी, खड़ी और हरियाणवी से क़रीब थी, इसलिए पंजाब से आनेवालों को ब्रजभाषा की तुलना में खड़ी और हरियाणवी में ज्यादा अपनाइयत महसूस हुई। इस प्रकार दिल्ली राजनैतिक सत्ता का केन्द्र बनी और उर्दू-हिंदी में पंजाबी और लहन्दा के प्रभाव के उपरांत खड़ीबोली, ब्रजभाषा और हरियाणवी के तत्त्व सम्मिलित होने लगे।

हिंदी-उर्दू के साझा विकास की तीसरी कड़ी दकन से उस समय जुड़ती है जब मोहम्मद तुग़लक़ के युग में उत्तर भारत अर्थात् दिल्ली से एक बड़ी आबादी दौलताबाद (देवगीर) गई। ज़ाहिर है कि ये आबादी अपने साथ अपनी भाषा और संस्कृति भी ले गई, जिसे आगे चल कर क़ुतुबशाही और आदिलशाही बादशाहों का संरक्षण प्राप्त हुआ। चौदहवीं से सोलहवीं सदी तक के ज़माने में यह भाषा "रेख़्ता" की तुलना में "गुजरी" और "दकनी" कहलाई और साहित्य तथा कविता की भाषा की हैसियत से सामने आने लगी। इसके शायरों में मोहम्मद क़ुली क़ुतुबशाह, वजही, नुसरती, ग़व्वासी, मुक़ीमी, इब्ने नशाती, फ़ाइज़, वली और सिराज विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं, जिनकी गज़लें और मसनवियाँ दकनी उर्दू का शानदार सरमाया हैं। इन रचनाकारों की भाषा प्राकृतों से बहुत क़रीब थी। इसमें भाषा की मासूमियत, सादगी, स्वच्छता और प्राकृतिक सुन्दरता है।

दक्षिण की तुलना में उत्तर भारत में उर्दू-हिंदी को पूरी तरह सामने आने में प्रतीक्षा करनी पड़ी। इसका कारण यह था कि दरबारी तथा सरकारी भाषा फ़ारसी थी और वही संस्कृति, समाज

तथा साहित्य पर छाई हुई थी, परंतु जनता की आवश्यकताओं के कारण “रेख़्ता” का विकास जारी रहा। एक मिली-जुली साधारण बोलचाल की भाषा की आर्थिक आवश्यकता बाज़ारों, सैन्यशिविरों, देहात और ख़ानक़ाहों में पड़ती थी। अर्थात् लश्कर या लश्करगाह अर्थात् क़िले के बाज़ार के अर्थ में इस नई भाषा को उर्दू कहा जाने लगा, जो पहले संबंधवाचक संज्ञा के आधार पर ‘हिंदवी’ आरंभिक काल में वाक्यस्तरीय बनावट के आधार पर “रेख़्ता” और भौगोलिक आधार पर ‘दकनी’ कहलाती थी। यही भाषा हिंदूस्तान की बोली होने के कारण “ज़बान-ए-हिंदूस्तान” या ‘हिंदी’ के नाम से जानी गई। उत्तर भारत में इस भाषा के प्रथम मानक नमूने अमीर ख़ुसरो की शायरी में मिलते हैं। ख़ुसरो के भाषा की विशेषता यह है कि उसे हिंदी-उर्दू वाले अपनी-अपनी भाषा स्वीकार करते हैं तथा ख़ुसरो को अपना पहला कवि/शायर मानते हैं।

पंखा होकर मैं डुली साती तेरा चाव (साती=साथी, प्रेमी)

मुंज जलती जनम गयो तेरे लेखन बाव (मुंज=मुझ)

इसी भाषा का प्रयोग भक्तों, सूफ़ियों, संतों और जोगियों ने अपने उपदेशों और अपनी कविताओं में किया। उनकी भाषा में फ़ारसी की साहित्यिक परंपरा, भोजपुरी का रस, ब्रज का लचीलापन, अवधी की मधुरता, और राजस्थानी का प्राकृतिक सौंदर्य तथा खड़ी बोली की खनक का समन्वय देखने को मिलता है।

ख़ुसरो की इस साहित्यिक तथा भाषावैज्ञानिक परंपरा को अवधी में मलिक मोहम्मद जायसी और तुलसीदास ने, ब्रज में सूरदास ने, राजस्थानी में मीराबाई ने तथा इन सभी भाषाओं/बोलियों की विशेषताओं को मिला कर कबीर दास ने शेख़ बहाउद्दीन बाजन और क़ाज़ी महमूद दरियाई ने गुजरी उर्दू में, फ़ख़रूद्दीन निज़ामी ने दकनी उर्दू में तथा मोहम्मद अफज़ल ने खड़ी बोली में आगे बढ़ाया।

शाहजहाँ के शासन काल तक उर्दू-हिंदी के भाषा वैज्ञानिक धाराओं ने अपना-अपना रास्ता तलाश कर लिया था तथा साहित्यिक भाषा के रूप में धारा प्रवाहित होने लगी थीं। अठारहवीं सदी के अंतिम चरण में राजनैतिक तथा समाजिक स्तर पर वर्चस्व स्थापित करने की होड़ और उन्नीसवीं सदी के प्रथम चरण में अँग्रेजी साम्राज्य की नीतियों ने उर्दू-हिंदी का पूर्णरूप से विभाजन कर दिया। फोर्ट विलियम कॉलेज के पाठ्यक्रम ने इस विभाजन पर मुहर लगाया।

हिंदी-उर्दू के साझा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की झलक प्रस्तुत करने का उद्देश्य यह था कि दोनों भाषाओं के मूल अर्थात् 'भारतीयता' को समझा जा सके। अब चूँकि ये दोनों अलग-अलग भाषाओं के रूप में स्थापित हो चुकी हैं, इसलिए उनकी समानताओं और विभिन्नताओं पर प्रकाश डालना आवश्यक है। यह ऐतिहासिक प्रमाण है कि खड़ीबोली के मानक रूप का जिस समय उर्दू ने प्रयोग करना प्रारंभ किया, उस समय हिंदी साहित्य की दुनिया ब्रजभाषा तथा अवधी में जगमगा रही थी। परंतु अब दोनों भाषाओं की मानकता खड़ी बोली से संबद्ध है। इसलिए भाषावैज्ञानिक स्तर पर जितनी समानताएं इन दोनों भाषाओं की ध्वनियों अर्थात् स्वनिम, रूप तथा वाक्यविन्यास में मिलती हैं, उनकी तुलना में विभिन्नताओं का पलड़ा बहुत हल्का है। बल्कि इस संबंध में तो यहाँ तक कहा जा सकता है कि भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण से जितनी घनिष्ठता उर्दू-हिंदी में है उतनी घनिष्टता हिंदी-ब्रज भाषा, हिंदी-अवधी, हिंदी-मैथिली या उर्दू-ब्रज भाषा तथा उर्दू-अवधी में नहीं है।

सर्व प्रथम ध्वनियों पर दृष्टि डालते हैं। उर्दू की लगभग चालीस ध्वनियों में केवल छः अर्थात् ख़,ज़,.अ, ग़,फ़,और क़ ऐसी हैं, जो अरबी-फ़ारसी से ली गई हैं। बाक़ी सब भारतीय हैं और हिंदी-उर्दू में समान रूप से प्रचलित हैं। विशेषकर साधारण तथा महाप्राणत्व से संबद्ध लगभग पंद्रह ध्वनियां भ, फ, थ, ठ, झ, छ, ध, ढ, ढ़, ख, घ तथा मूर्धन्य ध्वनियाँ (Retroflex Sounds) ट, ड और ड़ ऐसे व्यंजन हैं, जो उर्दू-हिंदी में समान रूप से पाए जाते हैं। दोनों भाषाओं में प्रचलित आठों

स्वर- अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ओ, ए तथा दोनों द्विस्वर (Diphthongs) ऐ तथा औ शत प्रतिशत एक हैं।

अब रूपविज्ञान और वाक्य-विन्यास को लीजिए। अगर यह कहा जाय कि आपका नाम क्या है? आप कहाँ के रहने वाले हैं, आप कहाँ जा रहे हैं, आप कुछ बोलते क्यों नहीं? तो यह भाषा जितनी उर्दू है, उतनी ही हिंदी भी। साहित्यिक स्तर पर शब्दों का फ़र्क हुआ है, परंतु वाक्य में शब्दों का क्रम बिल्कुल एक जैसा है। उर्दू-हिंदी में लिंग भेद कहीं-कहीं देखने को मिलता है, वह भी 'रोज़मर्रा' के कारण।

वाक्य का प्राण, संज्ञा, क्रियाविशेषण और क्रिया में बसता है। उर्दू में बहुत-सी संज्ञाएँ और विशेषण अरबी-फ़ारसी से लिये गए हैं, परंतु सभी क्रियाएँ वही हैं, जो हिंदी में हैं और क्रिया के बिना वाक्य पूरा हो ही नहीं सकता। इसीलिए क्रिया को भाषा के रीढ़ की हड्डी कहा जाता है। अर्थात् उर्दू-हिंदी ऐसी जुड़वा बहनें हैं, जिनकी रीढ़ की हड्डी एक-दूसरे से जुड़ी हुई है। परंतु उर्दू ने अरबी-फ़ारसी शब्दों को अपने व्याकरण के अनुसार ढालकर नई क्रियायें बनाई है, जिससे उसका क्रिया भंडार विस्तारित हो गया है। उदाहरण स्वरूप कुछ क्रियायें प्रस्तुत है: फ़रमाना, शरमाना, ख़रीदना, आज़माना, बख़्शना, तराशना, लरज़ना, गुज़रना, नवाज़ना, क़बूलना, दफ़नाना, कफ़नाना, ख़र्चना, रंगना, बदलना, इत्यादि। यही मामला संयुक्त क्रियाओं का है। लगभग सभी संयुक्त क्रियाएँ उर्दू-हिंदी में समान रूप से प्रचलित हैं और दोनों भाषाओं में मुहावरे की हैसियत रखती हैं। इसी प्रकार संज्ञा-विशेषण को मिलाकर बनने वाले मुहावरों की संख्या हज़ारों में है जो हिंदी-उर्दू में संयुक्त रूप से प्रयोग किये जाते हैं। उर्दू-हिंदी में प्रचलित सर, मुँह, आँख, कान, नाक, गला, सीना, दिल, हाथ, पेट, पैर, नाखून के साथ बनने वाले संयुक्त मुहावरों के एक-एक उदाहरण: सर चकराना, मुँह खोलना, आँख दिखाना, कान बंद कर लेना, नाक सुकोड़ना, गला रूँधना, सीना

धक धक करना, दिल उछलना, हाथ मारना, पेट फूलना, पैर भारी होना, नाख़ून लाल करना इत्यादि।

परंतु उर्दू ने हिंदी की तुलना में अरबी-फ़ारसी बद्ध रूपिम (Bond morpheme) को हिंदी शब्दों के साथ जोड़कर सैकड़ों संयुक्त शब्द बनाए जो दोनों भाषाओं में प्रयोग होते हैं। उदाहरण- डाक ख़ाना, बेकल, बदचलन, राजदरबार, शरमीला, रंगीला, पानदान, अजायब घर, चिट्ठी रसां, चूहेदान, गुलजामुन, जगतउस्ताद, सब्ज़ी मन्डी, घुड़सवार, जेबकतरा, दिल लगी, समझदार, सदाबहार, घड़ीसाज़, थानेदार, फूलदान, कलाकार, लंगोटिया यार, कमरबंद, मुँहज़ोर, ढुलमुलयक़ीन, बेसुरा, दीवानापन, सनसनी ख़ेज़, कोढ़ मग़ज़्, बेबस, कफ़नचोर, बेलाग, सिंगार दान, तिमाही, तिराहा, चौराहा, चौपाया, चारपाई, मटरभश्ती, सरचढ़ा, लाचारी, नवचंदी, इमानबाड़ा, अटकलबाज़ी, धोकेबाज़, बटेरबाज़, पतंगबाज़, गनड़ीबान, हथियार बंद, तुकबंद, नाकाबन्दी, बेलदार, पहरेदार, फलदार, चमकदार, ठेकेदार, जालीदार, फूलदार, जोड़ीदार, धारीदार, लच्छेदार, कट्टूकश, पेचवान, नशीला, नोकीला, जोशीला, खर्चीला, धन-दौलत, काग़ज़-पत्तर, शादी-ब्याह, बंदरगाह, मोती मस्जिद, पश्चिमाबाद, उर्दूभवन इत्यादि।

उर्दू-हिंदी के मूल शब्दों की कोश संकलित की जाय तो उसमें सकर्मक क्रियाओं अर्थात् आ, जा, सो, धो, उठ, बैठ, जाग, इत्यादि, मसदरों खाना, पीना, उठना, बैठना, आना, जाना इत्यादि, क्रिया पदबंधों अर्थात् उठकर, बैठकर, आकर, कर सकना, बोल पड़ना, गिरते पड़ते, हाफते कांपते, उपसर्ग (Prefixes) है, हो, हूँ, हैं, था, थे, थी, थीं, गा, गे गी के अलावा जो शब्द आवश्यक रूप से स्थान पाएंगे वह हरूफ़-ए-जार अर्थात् ने, से, पर, तक, का के, की, को, में, ही, भी, तो, प्रश्नवाचक कल्मात क्यों, कब, कहाँ, कैसे, किधर, किस, कल्मात-ए-तरबीह ऐसे, जैसे, वैसे, कल्मात-ए-इशारिया अर्थात् इधर, उधर, यहाँ, वहाँ, जहाँ, कल्मात-ए-ज़मानी अब, जब, तब, अभी, जभी, तभी, कभी।

सर्वनाम : मैं, हम, तू, तुम, आप, वह और उनकी तस्रीक़ी रूप मुझ, तुझ, उस, मेरा, तेरा, हमारा, तुम्हारा, उन्हें, हमें, जिन्हें, सभी।

मानसूचक (Cardinal Numbers) एक, दो, तीन, चार।

क्रमसूचक (Ordinal Numbers) पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा।

उर्दू/हिंदी संयुक्त प्रयोग	संस्कृतनिष्ठ/तत्सम प्रयोग	फ़ारसीनिष्ठ उर्दू प्रयोग
पहला	प्रथम	अव्वल
दूसरा	द्वितीय	दोम
तीसरा	तृतीय	सोम
चौथा	चतुर्थ	चहारुम
पाँचवाँ	पंचम	पंञुम
छठां/छठवाँ	षष्ठ	सशुम

प्रथम श्रेणी की गिनतियाँ हिंदी-उर्दू दोनों में प्रयोग की जाती है। द्वितीय श्रेणी अर्थात् तत्सम गिनतियाँ केवल हिंदी में तथा तृतीय श्रेणी की गिनतियां सिर्फ़ उर्दू में प्रयोग की जाती हैं।

इस संबंध में मूल शब्दावली के अलावा तलमीहों (पुराख्यान) तथा कहावतों का अध्ययन भी बड़ा दिलचस्प है। यद्यपि उर्दू ने अपनी अधिकतर तलमीहें इस्लामी परंपरा से ली है परंतु राम, कृष्ण, राधा, लक्ष्मण, सीता, रावण, अर्जुन, भीम, हीर, रांझा, गीता, रामायण, सोहनी, महिवाल

इत्यादि भारतीय परंपरा से भी आई हैं। तलमीहों की तुलना में दोनों भाषाओं ने कहावतों को ज्यूँ का त्यूँ प्रयोग किया है। उदाहरण : जैसा देश वैसा भेस, ख़ून लगाकर शहीदों में शामिल होना, धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का, जाको राखे साइयां मार सके न कोए, लातों के भूत बातों से नहीं मानते, डूबते को तिनके का सहारा, हाथ कंगन को आरसी क्या पढ़े लिखे को फ़ारसी क्या, न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी, मुँह में राम बग़ल में छुरी, आँखों के अन्धे नाम नयन सुख, एक अनार सौ बीमार, रस्सी जल गई बल नहीं गए, दूर के ढोल सुहावने, कहाँ राजा भोज कहाँ गंगू तेली, कोयले की दलाली में मुँह काला, नाच न जाने आंगन टेढ़ा, घर का भेदी लंका ढाए इत्यादि विभिन्न ऐसी कहावतें हैं जो उर्दू-हिंदी की साझा संपत्ति हैं। जहाँ तक उर्दू शब्द भंडार का संबंध है तो इसका लगभग तीन चौथाई शब्द भंडार भारतीय है जो प्राकृतों तथा संस्कृत धातु को उर्दूवा कर बने हैं, और ये सब के सब थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ हिंदी में भी प्रयोग होते हैं। यह उर्दू-हिंदी में भाषा वैज्ञानिक संगम का उद्भुत उदाहरण है। परंतु यह भी वास्तविकता है कि उर्दू को विशेष पहचान दिलाने में वो एक चौथाई शब्द अति महत्त्वपूर्ण हैं, जो अरबी, फ़ारसी तथा तुर्की इत्यादि से आए हैं। इसी प्रकार की विशेष पहचान हिंदी ने तत्सम शब्दों से बनाई है। इसके बावजूद उर्दू, हिंदी शब्दों के बिना और हिंदी, उर्दू शब्दों के बिना बेरंग और स्वादहीन भाषाएँ प्रतीत होती हैं।

यह कहना कि किसी विशेष भाषा के लिए एक विशेष लिपि का होना आवश्यक नहीं है, बड़ी हद तक बचकानी बात है। हर भाषा का अपना स्वभाव होता है और उसी के अनुसार उसकी लिपि प्रचलित होती है। अगर ऐसा नहीं होता तो लिपि में कभी बदलाव नहीं आता और वही लिपि जो वैदिक युग में प्रचलित थी आज तक प्रचलित रहती। खरोष्ठी से देवनागरी तक उत्तर भारत की लिपियों में जो बदलाव आए हैं वह राजाओं महाराजाओं या भद्र वर्ग के लेगों ने नहीं किये, बल्कि भाषाओं की ध्वनियों को सही तौर पर उच्चारित करने तथा उनके प्राकृतिक विकास का साथ देने के लिए बदलाव आए। जब कोई भाषा विकास की प्रक्रिया से दो-चार होती है तो उसकी पुरानी ध्वनियों में बदलाव आते हैं। जब किसी भाषा का ऐतिहासिक घटनाक्रम तथा साँस्कृतिक पराकाष्ठा

से सामना होता है तो वह स्वच्छ अभिव्यक्ति के लिए अपने ध्वनि संसार में नई-नई आवाज़ें शामिल करती है और लिपि, अक्षरों द्वारा उन्हीं अभिव्यक्तियों को सुरक्षित करने का माध्यम है। अर्थात् यह स्वाभाविक है कि नई ध्वनियों के समावेश के साथ नए अक्षर भी शामिल होंगे इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भाषा अगर आत्मा है तो लिपि शरीर है। अर्थात् जिस प्रकार हिंदी के लिए देवनागरी उपयुक्त लिपि है, उसी प्रकार उर्दू के लिए अरबी-फ़ारसी लिपि का विकसित रूप "उर्दू लिपि" अति उपयुक्त है। क्यूँकि आज भी उर्दू लिपि में "ज्ञ या ण" की धवानियों को सही तरीके से उच्चारित नहीं किया जा सकता इसी प्रकार देवनागरी लिपि द्वारा "अ (ऍन), ग़(गैन), फ़े, क़, फ़, ज़ " इत्यादि अक्षरों द्वारा उच्चारित होने वाली ध्वनियों को ज़ाहिर नहीं किया जा सकता। इस से अर्थविज्ञान पर क्या पाभाव पड़ता या पड़ा है, इसका आभास करना कठिन नहीं।

Citation: शादाब, ज़ुबैर (2015). उर्दू-हिंदी : भाषावैज्ञानिक संबंध, HindiTech: A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal, 6 (3), 37-46. URL: https://hinditech.in/urdu-hindi-bhashavanyanik-sambandh/